मनुष्य बनो

मई ६३

वा० मू० ८-००

शरणागति, शुभ संकल्प,

क्षमा, प्रेम,

निष्काम कर्म, ब्रह्मचर्य पालन,

रक्षक
दयाल फकीर चन्दजी महार
मानवता मन्दिर होशियारपुर (पं

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है। मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायगा।

४—किसी धर्म, पंथ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जॉय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ साफ अवश्य लिखना चाहिये। उत्तर के लिये जबावी कार्ड आना चाहिये वी० पी० पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायगी। इसका वार्षिक मूल्य ८—०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुँचे तो पहले अपने यहां डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर मिले व अगला अङ्क निकलने से एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति विना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजने चाहिये। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ साफ लिखना चाहिये। और पते की तबदीली भी।

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

❋ मनुष्य बनो ❋

१९८

वर्ष ३३	चैत्र संवत २०४० वि०	अङ्क ७

गुरु नाम

गुरु नाम से देड़ा पार हुआ, सुखदाई सकल संसार हुआ ।
अब जग नहीं कारागार हुआ, सुख चैन का नित्त व्यवहार हुआ ।१।

चिंता न रही दुबिधा न रही, मन की सब दुर्मति हुई ।
मैं क्या थी क्या से क्या हूँ बनी, कैसे कहूं क्या निस्तार हुआ ।२।

घर में सुख है मन में सुख है, सुख ही सुख व्याप रहा चहुं दिस ।
गुरु भक्ति में आनन्द हुआ, सब विधि मेरा उद्धार हुआ ।३।

सुख का जब तार बँधा जगमग, घट में प्रगटा भक्ति का मग ।
भक्ति सुखदाई हुई मुझको, सुख भक्ति का व्यौहार हुआ ।४।

राधास्वामी ने की है दया भारी, अब मैं नहीं किंचित संसारी ।
जल पक्षी का जीवन प्राप्त हुआ, गुरु भक्ति का विस्तार हुआ ।५।

माधवाचार्य्य जी

हिन्दुओं में आज कल धार्मिक विचार से तीन प्रकार के मनुष्य पाए जाते है। एक समुदाय कहता है ईश्वर जीव और प्रकृति तीन वस्तुओं से सृष्टि होती है दूसरा कहता है नहीं केवल एक ही एक है तीसरे के विचार में सृष्टि का कारण एक तो है परन्तु उसके तीन पार्श्व हैं। हरि, चित्त, और अचित्त यह तीन रूप विश्वमात्र ब्रह्म हैं। यह तीनों वेदान्ती हैं। क्योंकि एक समय में भारत का असली मत वेदान्त था। वेदान्त में हर प्रकार की समुवाई हैं।

वह एक विश्वव्यापी नियम है। इस भेद के होने पर भी तीनों फिरके वेदान्ती कहलाते हैं। इनमें से पहला हैतवाद कहलाता है। जो ईश्वर और जीव का भेद मानता है। और उनको अलगर समझता है इस मत के नेता माधवाचार्य्य जी हैं। जिनका संक्षिप्त हाल आज हम आप लोगों को सुनाना चाहते हैं। दूसरा अद्वैतवाद है जिसके आचार्य्य श्री स्वामी शंकराचार्य्य जी हैं। यह जीव और ब्रह्म में भेद नहीं मानते। तीसरा वशिष्टा हैत है। यह कहता है ब्रह्म तो एक अवश्य है परन्तु नाम रूप आदि के विचार से वह भेद वाला माना जा सकता है। इत मत के आचार्य्य स्वामी रामानुज जी हैं। इनमें से माधवाचार्य्य जी का हाल आपको सुनाते हैं।।

माधवाचार्य्य सम्वत् ३१७ शाके में ओड़ी पी यातलोदा में उत्पन्न हुए थे। शरीर अच्छा दृढ़ और स्वस्थ था। इसलिये बाजे हिन्दू इनको भीम, हनुमान वा वायु का अवतार मानते हैं। जाति के ब्राह्मण थे और शास्त्रों के पूर्ण ज्ञाता थे। समझ बूझ भी बहुत अच्छी थी। यह दो भाई थे। दूसरे का नाम सायनाचार्य्य है जो वेदों के टीकाकार समझे जाते हैं। सायनाचार्य्य अपनी अद्वितीय विद्वता के कारण हरिहर, कुम्भ वकाराय, तीन राजाओं के मन्त्री और प्रधानोपदेशक थे। माधवाचार्य्य जी शंकर मतके सन्यासी हो गए थे। इनके सन्यास का नाम आनन्द तीर्थ था। इन्होंने भी बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं। और यद्यपि शंकर स्वामी के प्रसिद्ध शिष्यों में से हैं तथापि अन्त

में इन्होंने एक अलग मत स्थापन किया था ॥

माधवाचार्य्य जी के पिता का नाम मधीगेभट्ट था। और इनकी शिक्षा अन्तेश्वर में हुई थी। और यद्यपि यह शंकर स्वामी के प्रसिद्ध शिष्यों में से थे। तथापि इनके अनुयाइयों ने इन्हें अच्युतार्च का शिष्य बताया है जो ब्रह्मा के वंश में से था। ९ वर्ष की आयु में इन्होंने गीता पर भाष्य लिखा। जिस को उस काल के पण्डितों ने बहुत प्रिय समझा। और यह उत्तरी भारत में उसका प्रचार करने के लिये हिमालय तक लाए। यहाँ से लौटने पर तीन मठ स्थापन किये। जो अब तक मध्य ताल और सौब्राह्मण्य में वर्तमान हैं ॥

कहते हैं कि द्वारिका से एक जहाज गोपीचन्दन से लदा हुआ मलहारी समुद्र के तट पर पहुँचा और वहाँ नष्ट हो गया। माधवाचार्य्य के शिष्यों का विश्वास है कि उनको आकाश वाणी हुई कि गोपी चन्दन के बीच में कृष्णजी की मूर्ति धंसी हुई है, यह उसके खोज में सवेरे ही उठे और उस को ढूंढ कर निकाल लाए और उसका मन्दिर बनवा दिया जो इस मत का गुरहारा समझा जाता है। इसके पश्चात् वह शास्त्रार्थ की इच्छा से देश में भ्रमण करने लगे। और अपनी विद्वता के बल से उस काल के सब विद्वानों को परास्त किया। यह शास्त्रार्थ का कार्य उन्नासी वर्ष की आयु तक प्रचलित रहा। फिर यह बद्रिकाश्रम में चले आए। और यहाँ ही अपने शरीर को त्याग दिया ॥

बद्रिकाश्रम में जाने से पहले इन्होंने आठ मन्दिर बनवाये थे, उनके प्रबन्ध का कार्य्य आठ योग्य ब्राह्मणों के हाथ में था। यह सब अब तक वर्तमान हैं। इन सन्यासियों के प्रतिनिधियों को अठाईस वर्ष तक उडोपी के मन्दिर की महन्ती करनी पड़ती है। और जो कोई महन्त होता है वही उस समय के खर्च का जिम्मेवार समझा जाता है। खर्च बहुत होता है परन्तु यह पहले ही से उसका प्रबन्ध कर लेते हैं ॥

इस मत के लोग वैष्णव कहलाते हैं और राम व कृष्ण की मूर्ति को पूजते हैं। और अपने फिर्का को ब्रह्म सम्प्रदाय कहते हैं ॥

इनके मत के संक्षिप्त मन्तव्य यह है "विष्णु जो ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं।

वैकुण्ठ में रहते हैं। वह ज्योतिमय पुरुष है, सदा से हैं, सदा रहेंगे। प्रकृति उसकी दासी और सर्व जीव उसके दास हैं॥

प्रकृति सत, रज और तम की मिली जुली अवस्था का नाम है। और वह विष्णु की इच्छा से तरह २ के रूप धारण कर लेती है। जीव अनादि है उनके कर्म्मों के कारण से भगवान् उन को फल देते हैं। आत्मा और परमात्मा एक नहीं है। और न कभी हो सकते हैं। परमात्मा स्वाधीन और आत्मा उसके आधीन है। मोक्ष की दशा में भी जीव परमात्मा में लीन नहीं होते केवल उसके महा चेतन के सामने अपनी खुशी को भूल जाते हैं और उसका आनन्द लाभ करते हैं। और अपनी अस्थि को नहीं जानते।

माधवाचार्य्य के सिद्धान्त वर्तमान काल के आचार्य्य श्री महर्षि स्वामी दयानन्दजी के मन्तव्यों से कुछ २ मिलते जुलते हैं। वह भी जीव और प्रकृति को पृथक २ मानते हैं। किन्तु और बातों में आर्यसमाज तथा ब्रह्मसम्प्रदाय में आकाश पाताल का अन्तर है। श्री महर्षि स्वामी दयानन्द जी अवतारों को नहीं मानते परन्तु माधवाचार्य जी अवतारों को मानते थे। स्वामी दयानन्द जी उनके विपरीत थे॥

माधवाचार्य्य जी ने शिष्यों को तीन संस्कार करने की आज्ञा है अंकन नामकरण, और भजन अर्थात् शरीर पर विष्णु का आकार बनाना, वैसे ही नाम रखना, और मन, वचन कर्म्म, से शुद्ध रहना, ईश्वर की भक्ति करना आवश्यक बात थी। दश आचारिक नियम जिनकी पालना पर जोर दिया जाता है। यह है :—सत्य बोलना, सच्ची सलाह मानना, नम्रता पूर्वक वार्तालाप करना, धार्मिक ग्रन्थों का अवलोकन करना, दान देना, रक्षा करना ईर्षाद्वेष से रहित रहना, ईश्वर पर विश्वास रखना, और ब्रह्मचर्य्य का पालन करना॥

पहिली चार बातें शिक्षार्थियो के लिये है। और पूरी दसों साधुओं के लिये हैं॥

माधवाचार्य्य जी के मत में एक बड़ी खूबी यह हैं, कि उसको शैवमत वालों ने साथ अन्य वैष्णवों की तरह द्वैष भाव नहीं है। वरन् इसके विप-

(शेष पृष्ठ ३६ पर)

(सफलता के साधन से)

लक्ष्य एक हो

महर्षि शिवव्रत लाल वर्मन

मनुष्य का हृदय समस्त गुणों का भण्डार है। इसमें अनगिनत शक्तियों के भण्डार भरे पड़े हैं। अज्ञानता या अनजाने की दशा में इसे ज्ञान नहीं होता। वायु के झोंके से झकोले खाये हुए पानी की सतह पर किसको किनारे के वृक्षों की छाया दिखाई दे सकती है। इस प्रकार चंचल मन में स्वरूप का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। अतः हमारा जीवन चक्र अपूर्ण और अधूरा रह जाता है। न हम मंजिल की ओर चलते हैं और न हमारी विचार शक्ति केन्द्र की ओर रुझान करने पाती है। हम ऊट पटांग, अण्डबण्ड बातों की भूल भुल्लैयो में पड़कर बहुत बुरी दशा को पहुँच जाते हैं।

संसार को अनेकत्व प्रियता का रोग बढ़ता जा रहा है एकत्व प्रियता की ओर से हमने आँखें मींच रक्खी हैं। मानो कि बाल की खाल निकालने में हम दक्ष हैं किन्तु हृदय रूपी दर्पण का बाल निकालने में हमारे सब उपाय निष्फल रहते हैं और हमारी तीव्र बुद्धि खो जाती है।

हम इच्छा या वासना के विस्तृत और असीमित नियम के पाबन्द बनाये गये हैं लेकिन बद्ध या बँधे हुए शब्द से बन्धन या घिराव का अर्थ नहीं लेना चाहिये। यह बीज है जो अपनी उन्नति और स्वतंत्रता के विस्तृत क्षेत्र की खोज करता है। यह इसका प्रयोजन है जिस प्रकार किसान बिना बीज के खेती नहीं कर सकता, जिस प्रकार मनुष्य बिना बीज या वीर्य के सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकता, इसी प्रकार बिना इच्छा के किसी को आज तक किसी प्रकार की पूर्ण उन्नति का धन हाथ नहीं लगा।

इच्छा मानव स्वभाव या प्राकृतिक अंश है और उसे प्रत्येक दृष्टि से ध्यान देने का अधिकार है। केवल समझने और समझ लेने की बात है ताकि भूल और नासमझी के संशय भ्रम हृदय पर जमने न पावें;

मोती की उत्पत्ति समुद्र की सीपी से होती है किन्तु उसकी शान राजों

महाराजों में सम्मान पाती है।

नदियों का विकास पहाड़ के सोतों से होता है किन्तु मैदानों में उतरने पर उनकी पवित्रता और महत्व का पता चलता है। भावों का प्राकटय घटनाओं के होने पर होता है लेकिन हृदय की प्रकाशमान धारों में जब वह स्थान पाते हैं तो मनुष्य को देवता बनाकर छोड़ते है।

क्रोध अपने परिणाम को नहीं समझता इसलिये बुद्धि उसका साथ नहीं देती। ऐसे अवसर पर वृत्तियों को प्रभावित न होने देना चाहिये। गम्भीरता और धीरज से तनिक काम लिया जाय तो नीचता दूर हो जाती है और शोक नहीं होता। इसलिये हमको अपने भावों की ओर से बेपरवाह होने या बेपरवाही से इसको कुचलने की आज्ञा नहीं है क्योंकि कहीं भी उसके अभिप्राय का दृश्य दुनियां मे दिखाई नहीं देता।

हम उन्नति के लिए बनाये गये हैं। बीज वृक्ष से उत्पन्न होकर बढ़ोत्तरी की सब अबस्थाओं को पूरा करके फिर बीज बनने का इच्छुक रहता है। और फिर बीज बन जाता है। हमारे बीज हमारे अस्तित्व का प्रारम्भ किसी पहिले के बीज या अस्तित्व से होता है और हम इच्छा वश उस ओर आकर्षित होते हैं। कठिनाई तो यह है कि अपने जीवन की समस्या का अध्ययन या पूर्ति प्रायः गलत ढंग पर करते हैं और दबाये रखते है. जिसका परिणाम असफलता होता है। जो लोग इस सिद्धान्त को समझ गये हैं वह सच्चे निशाने बाज की तरह अपने आप को संयम में रखकर केवल निशाने की ओर अपना ध्यान गाढ़ देते हैं। जिस तरह गोली बन्दूक से निकलती है और आहट करने पहले निशाने पर बैठ कर तब आहट देती हैं उसी तरह चतुर लोग भी सफलता से सच्चा शिकार मार जाते हैं। जिनकी दृष्टि इधर-उधर रहती है उनके हाथ शिकार नहीं आता।

यह भारत हिन्दू धर्म की शिक्षा का अमूल्य भण्डार है। इसमें जिन घटनाओं का वर्णन छोटी छोटी कथाओं के रूप में किया गया है, वह हमारे प्रति-दिन के जीवन में उच्च बनाने वाली और पथ प्रदर्शक होती हैं।

कहा गया है कि एक बार द्रोणाचार्य राजकुमारों को तीर चलाने की विद्या सिखा रहे थे। परीक्षार्थ इन सबको जंगल में ले गये। बट के वृक्ष पर एक दिखावटी पक्षी बिठाया गया। आज्ञा हुई कि इसको तीर से बेध दो। सबसे प्रथम महाराजा युधिष्ठिर को अवसर दिया गया। वह तीर कमान को चिल्ले से जोड़कर बैठ गये। द्रोणाचार्य ने पूछा–"बेटा! किस किस वस्तु को देखते हो?" उन्होंने उत्तर दिया– "आपको देखता हूं; अपने आप को देखता हूं, तीर कमान को देखता हूं और पक्षी को भी देखता हूँ।' द्रोणाचार्य बोले–"तू उठ बैठ. तू अभी निशान बेधने योग्य नही हुआ।" इसके पश्चात भीम, नकुल और सहदेव आदि की बारी आई। उन्होंने भी ऐसे ही ऊँट पटाँग उत्तर दिये। वह भी बिठा दिये गये। फिर दुशासन और उसके भाइयों की बारी आई। यह भी वैसी ही बेतुकी बातें कहने लगे और उनको वहाँ से हटा दिया गया। अन्त में अर्जुन को पक्षी मारने की आज्ञा हुई। वह तीर कमान हाथ में लेकर आसन जमाकर बैठ गया। गुरु ने पूछा–"क्या देखता है?" इसने धीरे से उत्तर दिया–"मुझे पक्षी के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देता। दूसरी ओर दृष्टि नहीं है।" द्रोणाचार्य बोले–"अच्छा तीर चलाओ।" आज्ञा की देर थी कि तीर सनसनाता हुआ चला और पक्षी के हृदय को बेध दिया और उसे अपने साथ भूमि पर गिरा दिया। यह लक्ष्य वेध का सच्चा मार्ग है।

यह कथा है किन्तु सच्ची और शिक्षा प्रद है। इससे स्पष्ट रूप से प्रगट है कि जो लोग आने में एक लक्ष्य रखते हैं वही सफलीभूत होते हैं। जिनमें दुचिताई, दुविधा और इधर उधर देखने का स्वभाव होता है उनको सफलता नहीं मिलती। चाहते कुछ हैं, पाते कुछ हैं करते कुछ हैं, कहते कुछ हैं। फिर यह सफल कैसे हों। धन चाहते हो तो धन प्राप्त करने की ओर ध्यान रक्खो विद्या की इच्छा है तो विद्या को अपना उद्देश्य बना लो। मान सन्मान और अधिकार का विचार है तो उसी का ध्यान रक्खो और एकाग्रता तथा एक लक्ष्य की आदत सीखकर पूर्णता प्राप्त कर लो तो सफल हो जाओगे।

तुम दरिद्री और मूर्ख न बनो। तुम अनाड़ी और अज्ञानी न बनो। तम

अपमानित और सम्मान हीन न रहो। कौन कहता है कि तुम पशुओं की तरह परवशता का जीवन व्यतीत करो जिधर झुको शेर की तरह झुको और अपने जीवन को उन्नति की दशा में पहुंचा दो फिर आगे का मार्ग स्वयं खुल जायगा।

सब बातें ध्यान देने या मन लगाने की हैं। यदि निर्धनता पर ध्यान देते हो तो निर्धन बने रहोगे। याद रक्खो निर्धनता सब पापों की जड़ है। यदि अनाड़ीपन और अज्ञानता पर ध्यान देते हो तो अज्ञानी के अज्ञानी बने रहोगे। अज्ञान और अनाड़ीपन समस्त दुःखों की जड़ है। यदि अपमान और अप्रतिष्ठा को ध्यान देते हो तो क्रिया क्षेत्र में फुटबाल की तरह सबके लात घूँसे सहते रहोगे। जब तुमको स्वयं इतनी समझ है कि अपमान पाप है तो फिर अपना काम देखो और करते चलो चुपचाप काम में लगो। जिभ्या से कुछ न कहो। काम को पकड़ रक्खो। गरजने वाले बादल बरसते नहीं। बोलने वाले लोग अपने काम को बिगाड़ लेते हैं। महाभारत में एक कथा आती है कि दो को केकड़ों से प्रेम था। जब तालाब सूख गया तो पक्षियों ने केकड़ों से कहा कि हम चोंच में लकड़ी दबा कर उड़ते हैं तुम लकड़ी को मुँह से पकड़ रक्खो हम किसी बडे तालाब में तुमको पहुंचा देंगे। केकड़ों ने इसे स्वीकार किया।

लकड़ी को दबा लिया। पक्षी उड़े। मार्ग में लोगों ने यह दृश्य देखा। खुशी से तालियाँ बजाने लगे। केकड़े मूर्ख थे। लोगों से कहने को हुए कि अपना काम करो। मूर्ख न बनो। मुँह खोलने की देर थी कि लकड़ी छूट गई और केकड़े चट्टान पर गिरकर चकनाचूर हो गये। यही परिणाम अधिक बोलने वालों का होता है।

काम में मन की आकर्षण शक्तियों का उभार होता है। काम में लगो और विद्या, मान, अधिकार और सम्पत्ति प्राप्त करो। तुम्हारा मन स्वयं खेंच २ कर प्रत्येक बस्तु को तुम्हारे पास पहुँचाता रहेगा। यही प्रभाव चुम्बक का होता है जिसकी ओर इच्छित लोहा स्वयं खिचता रहता है, लेकिन शर्त यह है कि मन इधर-उधर भटकने न पावे अन्यथा जीती हुई बाजी के हारने का

डर रहेगा। काम मन को प्रसन्न रखता है। उदासी को पास नहीं फटकने देता। तुम चाहे प्रारम्भ में कैसे ही निर्धन, मूढ, और अपमानित हो, इसकी तनिक भी चिन्ता न करो। दूसरों को असफल देखते हो तो फिक्र न करो। सम्भव है वह एक सिर हजार सौदा के आसक्त हो। तुम केवल काम में लगो, सफल हो जाओगे। बुद्धिमानो को इससे अधिक क्या चिताया जाय।

रामायण में उल्लेख है कि "गंगा के लाने में महाराज सगर के सहस्त्रों पुत्र नष्ट हो गये क्योंकि वह एक सिर हजार सौदा वाले लोग थे। भागीरथ इनके प्रतिकूल अपनी धुन का पक्का था। काम में लगा। सिरतोड़ परिश्रम किया और हिमालय का हृदय चीरते हुए गंगाजी को मैदान में घसीट लाया। भूमि को सिंचाई का अवसर दिया। खेतियाँ लहलहा उठीं। बंजर और ऊसर भूमि में बाग लग गये। अकाल का भय जाता रहा। गंगा की लहरें हरहर करती हुई गंगोत्री से हिन्द महासागर की ओर चली गईं। बनारस, इलाहाबाद, कानपुर, पटना, मुंगेर, हुगली आदि पचासों नगर इसके तट पर बस गये। केवल एक भागीरथ के परिश्रम और काम का फल है। याद रक्खो—

उलूल अज्म दानिश्मन्द जब करने पै आते हैं।

समन्दर फाड़ते हैं कोह से दरिया बहाते हैं॥

=000=

कल्पना, मनन और होना

काम का सम्बन्ध मन से है यह तो सब जानते हैं। मन जो चाहता है कर लेता है। मन के आकर्षित हुए बिना आज तक किसी ने कोई काम नहीं किया और सम्भवतः कर भी नहीं सकेगा। जो कुछ होने को होता है वह सच्चे मन वाला मनुष्य पहिले ही से इसे जान लेता हैं और उस काम का पूरा नक्शा पहिले ही से विचार में आ जाता है। दृष्टान्त रूप में यदि कोई व्यक्ति घर बनवाना चाहता है तो घर का नाम लेते ही जो कुछ घर की

रूपरेखा है वह उसकी बुद्धि में पूर्ण विवरण सहित आ जाती है। सफलता का यह प्रथम मुख्य और सबसे आवश्यक भाग हैं। यह असली नींव है। जिस समय उसने इसे जान लिया, कल्पना और विश्वास की दृष्टि से उसे देख लिया तब घर का विचार कुछ इस प्रकार उसके मन और मस्तिष्क से चिपट जाता है कि वह काम करने पर विवश हो जाता है और घर बनवा कर छोड़ता है। यह मन का स्वाभाविक भाव है प्रकृति ने प्रत्येक व्यक्ति को प्रदान किया है और यही काम प्रारम्भिक सफलता है।

प्रथम कल्पना (ख्याल) तब मनन, फिर होना आता हैं। अर्थात पहले किसी विषय पर विचार उठता है, तब मनन होने के पश्चात उसके होने की बारी आती है। मनन और होना कुछ नहीं है। केवल कल्पना या विचार के विभिन्न रूप हैं। विचार में बोध है और 'होना' या क्रिया भी बोध या मनके दूसरे रूप हैं। बोध ही आवश्यकता के जानने, समझने और उनके दूर करने का उपाय है। जिस बात को हमने सरल समझ रक्खा था अब वह विज्ञान की दृष्टि से कठिन हो गई और फिलोसफी का वह सूक्ष्म विषय हो गया, जिसमें योग और ज्ञान सबकी खपत हो सकती है।

मानव जीवन की सफलता की दशा ठीक इस घर के दृष्टान्त से समानता रखती है। किसी किसी की बुद्धि में तो सफलता के समस्त अंग पहिले ही से आ जाते हैं और उसे बनाने बिगाड़ने की आवश्यकता नहीं रहती और किसी किसी की बुद्धि में घर की सब आवश्यक सूरत तो आने को आगई लेकिन इसने पूरी तरह पर सोच विचार से काम नहीं लिया और न पूरा नक्शा तैयार किया। यह कारण है कि उसे समय समय पर जीवन और सफलता के कुछ अंगों में सुधार की आवश्यकता हुआ करती है।

मनुष्य के मन में प्रकृति ने विचित्र त्रिपुटी की नीव रक्खी है। इसमें आदि, मध्य और अंत और पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश की विभिन्न श्रेणियाँ अलग अलग मौजूद है। सफलता के इच्छुक को पहिले 'पृथ्वी' पर धन एकत्रित करने की आवश्यकता होती हैं। तत्पश्चात उसे 'आकाश' पर धन

इकट्ठा करने की बारी आती है। अब आप प्रश्न करेंगे कि मध्य भाग को क्यों छोड़ा जा रहा है। इसलिये इस की व्याख्या मुख्य है।

मन का मध्य भाग वह है जिसमें संकल्प विकल्प उत्पन्न हुआ करते हैं। सोचने विचारने का सम्बन्ध केवल इसी मार्ग से है। आप जो देखते, सुनते, सूंघते और खाते हैं. उनके स्वाद का ज्ञान मनके इसी मध्य भाग के आधीन है। यह मन पहिले स्वाद लेता है तब उसे पृथ्वी और आकाश में धन जमा करने की सूझती है। क्रिया रूप से तुम भी हर प्रकार के कार्य व्यवहार में ऐसा ही करते हो, किन्तु इसे बहुत कम जानते और समझते हो।

मगर जना देना व जताना हमारा काम है।

भोजन का ग्रास मुँह में पड़ा। आप उसे चबाते हैं। दांतों से पीसते हैं। जिभ्या से स्वाद लेते हैं। यहाँ तक तो आपको जानकारी है। वह ग्रास जब गले से नीचे उतर गया वह मैदान में ठहरा। आपको उसके सम्बन्ध में जानकारी नहीं होती यद्यपि उसकी पाचन क्रिया का सम्बन्ध आप ही से है। यह मेदा (पक्काशय) मन की पृथ्वी है। चबाया हुआ ग्रास या चबाये हुए ग्रास का धन पहिले मेदे में जमा किया जाता है। फिर उसी से रक्त और धातु आदि बन कर नस नाड़ियों में दौड़ते हैं और उन सबका मुख्य अंश जिसे ओजस या ओज कहते हैं मस्तिष्क की ओर जाकर वहाँ इकट्ठा होता है। मुख का लावण्य तथा माथा और आँख का तेज यह सब ओजस ही है। यह न हो तो फिर मुख पर तेज या लावण्य कभी न आवे।

तुम्हारा मस्तिष्क भी इसी प्रकार आकाश से धन जमा करता रहता है। दोनों जगह धन के इकट्ठा करने वाले तुम ही हो जैसे कि भोजन अपने को सारे शरीर में पहुंचाने का काम चुपचाप तुम्हीं से कराता है किन्तु तुमको तनिक भी जानकारी नहीं हो पाती। कि यह कैसे और किस प्रकार होता है।

मनुष्य को जो कुछ ज्ञान प्राप्त होता है, उसका सम्बन्ध केवल मन के मध्य भाग से है। इस भाग में संकल्प शक्ति का वास है और इसकी उत्पत्ति केवल यहां से है क्यों कि मध्य भाग मिला हुआ और आकाशीय होने के कारण

इसमें पृथ्वी और आकाश, आदि और अन्त के प्रभाव मिले-जुले रूप में रहते हैं। जहां दो वस्तुओं की मिलौनी होती है वहीं विवेक अहंकार और सोच-विचार की दशा उत्पन्न होती है। जहाँ मिलौनी नहीं है, वहाँ कोई कैसे परख करेगा और क्या परख करेगा। यह विशेषता केवल बीच वाले मन की है। यदि इसे भली प्रकार समझलो और काम में लग जाओ तो तुम न केवल बुद्धिमान हो जाओगे किन्तु सूफी, ज्ञानी, योगी तात्पर्य कि जो चाहो बन जाओगे और सब में पूर्णता प्राप्त कर लोगे। लोग करने को तो काम करते हैं किन्तु बिना सोचे-समझे और जाने-बूझे हुए काम करते हैं। अतः जीवन की सफलता की उन्नति से वंचित रह जाते हैं। हम फिर इस मन की ओर तुम को आकर्षित करते हैं।

इस मन के तीन रूप हैं—स्थूल, मध्य, और सूक्ष्म। स्थूल भाग तो मेदा (पक्वाशय) में रहता है जो पृथ्वी है। सूक्ष्म भाग मस्तिष्क में रहता है। जो आकाशीय है और मध्य भाग हृदय में रहता है। इसी मध्य या बीच के मन को हर जगह काम करना पड़ता है। इस बीच वाले मन को भली प्रकार शुद्ध कर लो। फिर इसे काम में लगाओ। तब देखो कि तुम कैसे सफल नहीं होते हो।

इस मन को संशय से निर्मल रक्खा जाय। यह भ्रम के वश न रहे, असमंजस या दुविधा रहित हो जाय, अगर मगर में न फँसे, वह निर्मल हो जायगा अन्यथा यह आदत अत्यन्त दुखदायक है। प्रत्येक आपत्ति जो मनुष्य के सिर पर आकर मंडराती रहती हैं, इसी कारण आती हैं अन्यथा कभी दुनिया में किसी को दुख न हो। इसी को दूर करने के लिए सुधार और संयम के प्रबन्ध का प्रयत्न किया जाता है लेकिन उपाय प्रायः उलटे पड़ते हैं। कारण यह है कि मनुष्य स्वयं समझ-बूझ कर अपनी गढ़त नहीं करता।

आधीनता या ताबेदारी बुरी वस्तु है। इसी से बन्धन और दासता के प्रभाव उत्पन्न होते हैं और शिक्षा तथा दीक्षा भी गले की जंजीर, हाथ की हथकड़ी और पाँवों की बेड़ी बनकर इसे हर तरह से जकड़ लेती है। इससे

यह अभिप्राय नहीं कि किसी को शिक्षा न दी जाय। कहना केवल यह है कि इस शिक्षा के क्रम में कोई ऐसी मद् शामिल की जाय जो इसके स्वरूप, व्यक्तित्व और अहंभाव को उभार उभार कर निखारती रहे। तब यह कमी अपने आप दूर होगी।

मन को इस प्रकार उज्ज्वल करके सांसारिक और जीवन के व्यवहार में लगो ताकि तुम में धैर्य, दृढ़ता, एकाग्रता आ जाय। जो काम हाथ में लो उसे पूरा कर दिखाओ। सफल हो जाओ। यश, मान, योग्यता और शिष्टाचार तुम्हारे हिस्से में आये और दुनिया जान जाय कि तुम सच्चे आदमी हो। सफलता और सफलता की उन्नति इसी प्रकार प्राप्त होती है। अशुद्ध कमाई अशुद्ध मन मनुष्य के लिये दरिद्र और अपयश है।

—:000:—

मुख्य नियम

एक व्यक्ति आयु पर्यन्त काम करता रहता है और कठिनाई से उसे खाने पीने भर भी प्राप्त नहीं होता। जो कार्य करता है वही बिगड़ जाता है। प्रत्यक्ष में वह प्रातः काल से लेकर शाम तक नाक रगड़ता रहता है मगर लक्ष्मी उसको अपना दर्शन नहीं दिखाती। एक दूसरा व्यक्ति है जो रात दिन हंसता रहता है। हंसी खुशी में उसका समय कटता है। थोड़ा सा काम करता है और वह हरा भरा हो जाता है उसका घर कुबेर भगवान का भंडार हो जाता है। बात क्या है? क्या भाग्य ने उन दोनों की दशाओं को भिन्न २ बना रक्खा है?

नहीं, किन्तु असलियत यह है कि उन दोनों ने अपना भाग्य आप बनाया है। उनकी सफलता और असफलता में किसी देवी देवता का हाथ नहीं है और न कोई देवी देवता किसी को भाग्यशाली या दुर्भागी बना सकता है। जो जैसा करता है वैसा फल पाता है। जो जैसा सोचता है वैसा हो जाता जाता है।

मगर कैसे अंधेर की बात है कि एक व्यक्ति २४ घंटे काम में लगा

रहे और फिर भी कुछ न मिले और दूसरा केवल दो घंटे या इससे भी कम काम करे और मालामाल रहे। फिर इसका कोई न कोई कारण अवश्य है। बिना कारण के परिणाम नहीं होता।

मेरी माँ एक कहानी कहा करती थी। कहानी यह है कि एक ब्राह्मण था। दिन भर मांगे दियाली भर पावे। हमारे गाँव में दियाली छोटे दीपक को कहते हैं। बेचारा बड़ा दुखी था। अन्त में एक दिन ब्राह्मणी ने कहा कि तुम परदेश जाओ, कुछ काम काज करो। इस प्रकार माँगने से काम न निकलेगा। ब्राह्मण ने कहा—"बहुत अच्छा! मगर तू मुझे चार पूड़ी बना दे ताकि राह में काम आवे।" ब्राह्मणी गई और पड़ौस के चार घरों से चार पूड़ी माँग लाई और ब्राह्मण को देदी। वह उनको लेकर परदेश चला। दोपहर के समय जब धूप तेज हुई वह नहा धोकर एक कुँये के मठ पर बैठ गया और राम का नाम लेकर कहने लगा कि एक खाऊं; दो खाऊँ तीन खाऊँ कि चार खाऊँ। इस कुंए में चार भूत रहते थे। वह डरे, समझे कि ब्राह्मण हम ही को खाना चाहता है। हाथ जोड कर आये और कहने लगे कि तुम हम को न खाओ। हम तुम को एक बटलोई देते हैं। जब तुमको आवश्यकता हुआ करेगी यह सब जरूरी सामान इकट्ठा कर दिया करेगी कर दिया करेगी। ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ। अन्धा क्या चाहता है, दो आंखें। बटलोई लेकर घर आया और सारा जीवन सुख चैन से व्यतीत किया।

इस कहानी में और भी कुछ है जिसको मैं यहाँ छोड़े देता हूं। इससे जो शिक्षा मिल सकती है वह यह है कि जब तक आदमी दूसरों के आश्रित रहता है सौभाग्य का मुँह नहीं देखता। घर में रहने से अभिप्राय स्थूल देह में रहने से है। जो मनुष्य सुस्त बन कर अपने तन बदन के पीछे लगा रहेगा वह आलसी होगा और दूसरों से सहायता मांगने के लिये विवश रहेगा। परदेश जाने से अभिप्राय यह है कि स्थूल देह के मंडल को छोड़कर थोड़ा बुद्धि के मंडल की ओर रुझान करे। चार माँगी हुई पूड़ियाँ पड़ौसियों और दूसरों के अनुभव, निरीक्षण और उनके जीवन की मिसालें हैं। कुँआ मनुष्य

का अन्तःकरण है जिस में घुस कर वह औरों की परिस्थियों और उनके जीवन की घटनाओं से लाभ उठाकर सोचता है कि मैं भी इसी तरह काम करूँ और अपने लिये ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करूँ जिससे दुख दूर हो। चार भूत जो भरमाने वाले कुँये रूपी अंतकरण में रहते हैं मन, बुद्धि; चित्त और अहंकार हैं। उनको वश मे कर लेने से सफलता की बटलोई मिल जाती है और फिर मनुष्य किसी के आधीन नहीं रहता।

इस कहानी में सफलता का असली भेद छिपा हुआ है। जो व्यक्ति किसी लौकिक या पारलौकिक जीवन में सफलता प्राप्त करना चाहता है, वह इस पर भली प्रकार विचार करे और उसकी प्रतिकूल दशा का रहस्य जिसका ऊपर वर्णन आया है स्वयं हल हो जायगा।

जो व्यक्ति दिन भर काम करता है और फिर भी असफल रहता है, वह बददिल और बेदिल व्यक्ति है जो दूसरों की कमाई पर कुत्ते की तरह आँख लगाये रहता है और उसके कुछ हाथ नहीं आता। जो थोडी देर काम करके धनवान हो जाता है, वह ऐसा व्यक्ति है जो मन की समस्त शक्तियों को कुछ देर के लिए काम में लगा देता है और उसका काम बन जाता है। केवल यह भेद है जो इनकी हालतों में गुप्त रूप से छिपा हुआ है। जिस व्यक्ति का मन काम में नहीं लगता, वह क्या काम करेगा। वह दिन भर माँगे और दियाली भर पावे। जो एक बार अपने मन को वश में कर लेगा, सुख सम्पत्ति उसके घर निवास करेगी।

जैसे संसार की सारी बातें किसी न किसी नियम या कानून के आधीन हैं, वैसे सफलता भी अपना विशेष नियम रखती है। इस नियम को तुम जान लो फिर सफलता तुम्हारा पग चूमेगी।

इस नियम की विभिन्न धाराऐं हैं। इनको विवरण सहित लिखना कठिन है फिर भी कुछ धारायें उनकी व्याख्या सहित पाठकों के सन्मुख प्रस्तुत करता हूँ।

धारा (1)—जो मनुष्य सफलता प्राप्त करना चाहता है उसको ईश्वर पर भरोसा रखना चाहिये।

व्याख्या—प्रत्येक व्यक्ति जो काम करना चाहता है, उसे अपने चित्त की वृत्ति को अपने शरीर के किसी न किसी भाग पर स्थिर करना होता है। जैसे यदि तुम किसी मशीन को अपने हाथों से गति देना चाहते हो तो ध्यान देने पर तुमको स्वयं ज्ञात हो जायगा कि तुम्हारा चित्त और उसकी समस्त वृत्तियाँ या चेष्टायें एक विशेष स्थान पर एकाग्र और एकत्रित हो गई हैं और एकत्रित हो गई हैं और वहाँ से शक्ति की धार स्वयं खिचकर हाथों में आ रही है और तुम किच किचाकर मशीन को गति दे रहे हो। तुम्हारा चित्त कहाँ एकाग्र होता है इसको तुम नहीं जानते, मैं जानता हूं। चूँकि तुम किसी प्रकार के आत्मिक साधन से सम्बन्ध नहीं रखते इसलिए मैं इसकी व्याख्या का साहस नहीं करता ताकि भ्रम न पैदा हो। यह विषय तुम्हारे ऊपर छोड़ा जाता है। तुम आप सोच समझकर परिणाम निकाल लो। इसे तो तुम भी अस्वीकार नहीं कर सकते कि काम के समय चित्त वृत्तियाँ कहीं न कहीं एकाग्र अवश्य होती हैं। काम करने वाले की शक्ल से आप पता लग जायगा अब प्रश्न यह है कि चित्त की एकाग्रता क्यों होती है? उत्तर यह है कि मनुष्य को अनजानपने से अपने में या अपने शरीर के किसी भाग में, जिसका उसको ज्ञान नहीं है, पूरा पूरा विश्वास हैं और अपने चित्त को वहां भेजकर सीधे वहां से शक्ति या बल की सहायता माँगता है। वह सहायता वहाँ से मिल जाती है और मशीन चल निकलती है। मनुष्य आलसी था, चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं मगर क्षण मात्र में उसने काम कर लिया। अब वह चंचल है। देखो इसकी दशा में कितना अन्तर है। इसका कारण अपने ऊपर विश्वास रखना और उस विश्वास की सहायता से काम करना है।

विश्वास किस पर था? अपने आपे पर। इस विश्वास ही को थोड़ा घना करना है। यह घना इस तरह किया जाता है कि हम ईश्वर पर विश्वास रक्खें। हमको ईश्वर या किसी बड़ी शक्ति को केन्द्र बनाकर उसको अपना कर लेना है ताकि जीवपने का कमजोर विचार ईश्वर के विश्वास के मजबूत विचार से दब जाय और हम शक्ति के विस्तृत क्षेत्र में आ निकलें। ईश्वर का विश्वास हमको अधिक शक्तिशाली बना देगा क्योंकि वह सर्वव्यापक

है और वह हमारे घट घट में बसता है ।

धारा (2)—जो व्यक्ति सफलता का इच्छुक हो वह केवल बनाने वाले (Constructive) विचारों से सम्बन्ध रक्खें, बिगाड़ने वालों (Destructive) से नहीं ।

व्याख्या—दुनिया में विचार दो प्रकार के होते हैं । एक बनाने वाले । दूसरे बिगाड़ने वाले । जिन विचारो से मन में खुशी, शान्ति और एकाग्रता आती है, वे बनाने वाले हैं और जिनसे अप्रसन्नता, अशान्ति और बेचैनी पैदा हो वे बिगाड़ने वाले हैं । बनाने वाले विचार एकाग्रता और अनुकूलता की ओर ले जाते हैं । बिगाड़ने वाले विचार भेद भाव और द्वैत भाव पैदा करते कराते रहते हैं । एक मन को सबल करते हैं दूसरे निर्बल बनाते हैं । जब तुमने किसी कार्य के करने का इरादा किया तो एक व्यक्ति तुमको सफल बनाने का तरीका सिखाता है दूसरा व्यर्थ की बातें सुनाकर तुम को भ्रम में डाल देता है और तुम दुबिधा में पड़ जाते हो । एक सवाल का एक बनाने वाला (Positive) पहलू और दूसरा बिगाड़ने वाला (Negative) पहलू है । बस इतना भेद है मगर इनका असर भिन्नता पैदा करता है । यदि काम करना है तो काम करने वालों की दशा और विचारों से शिक्षा लो ताकि तुम्हारी सफलता में सन्देह न रहे । बिगाड़ने वाले विचारों में नुक्ताचीनी भरी है । तुम जहाँ तक हो सके नुक्ताचीनी को त्यागो । किसी को धनी देखकर दिल में ईर्ष्या और डाह न आने दो । खुश होकर काम करो और कहो ईश्वर उसको बरकत दे । इसी प्रकार सफलता प्राप्त करने के लिए दिल में निर्धनता के विचार कभी न आने दो । काम करो और हमेशा आशा रक्खो कि वह सफल होगा; क्योंकि जैसे विचार हृदय में भरे हुए होंगे वह वैसे ही उसी अन्दाज और हिसाब से हाथों को काम करते वक्त गति देंगे । अगर बेमन से कर रहे हो तो काम अधूरा रहेगा । नदी में धार के बहाव के साथ तैरोगे तो जल्दी किनारे पर जा लगोगे और यदि धार का मुकाबला करके चलते हों तो जल्द थक जाओगे और डूबने का भी भय होगा । काम से प्रेम करो । उस काम से जितने सम्बन्ध रखने वाले हैं, उनसे सहानुभूति रक्खो ।

यह काम करने का उच्चतर ढंग है। यदि काम से घृणा और काम से सम्बन्ध रखने वालों से भेदभाव रखते हो तो तुम्हारा मन इधर कब लगने लगा। प्रेम और सहानुभूति काम को हरा भरा करते है। घृणा और द्वेष काम को बिगाड़ते हैं। जिसने इस नियम को समझ लिया वह सफल हो गया और यदि चूक गया तो असफल रह गया।

धारा (3)—काम करो। काम के फल को ईश्वर के अर्पण करो। अपने अहंकार से हस्तक्षेप न करो।

व्याख्या—संसार में हमको केवल काम करने का अवसर दिया गया है। हम स्वय यह निर्णय नहीं कर सकते कि हमारा काम अवश्य सफल होगा। सफलता की आशा मन में अवश्य रहे, मगर साथ ही यह ख्याल भी रहे कि इसका फल ईश्वर के अर्पण है। जो कुछ अच्छा-बुरा होगा, उसकी मौज के अनुसार होगा। मौज ही मैं मसलहत रहती है। ईश्वर जो कुछ करता है समझ-बूझ कर करता है। हमको उसकी आज्ञा और निर्णय पर प्रसन्न रहना चाहिये। इससे कई लाभ होते हैं।

प्रथम तो हम को उस कार्य से और उसके फल से घनिष्टता या आशक्ति नहीं रहती। दूसरे इसमें अहंकार पैदा नहीं होने पाता। तीसरे ईश्वर का विश्वास बढ़ता जाता है। चौथे चाहे फल कुछ भी क्यों न हो, न हम सुखी होंगे न दुखी होंगे।

धारा (4) काम का आइडियल और काम करने वाले का आइडियल दृष्टि के सामने रहे।

व्याख्या—जिस कार्य को करना चाहते हो पहिले उसका नक्शा दिमाग में बना लो कि काम ऐसा होगा और उसका यह रूप होगा। जैसे यदि मकान बनाना है तो उसका चित्र तुम्हारे मस्तिष्क मे स्थापित हो जाय। तुम समझलो कि नींव ऐसी हो, दीवारें ऐसी हों और इतनी खिड़कियाँ हों, आदि आदि।

इस बात की इतनी आवश्यकता नहीं है कि कुल विवरण अपने मस्तिष्क में ठूँस ठहरा लिया जाय। इससे यह लाभ होगा कि जहाँ तुमने हाथ लगाया

कि सफलता के साथ स्वयं नई नई उमंगें मन में उत्पन्न होंगी और वह न केवल सफलता की श्रेणी तक पहुँचाती जायेंगी, किन्तु मन और मस्तिष्क सूक्ष्मतर होते जाँयगे और वह काम बरकत बनकर आत्मिक लाभ प्रदान करने के योग्य होगा। हिन्दुओं में इस आइडियल को इष्टदेव कहते हैं। इष्टदेव पर ठहराव को निष्ठा कहते हैं। इष्ट सबका एक नहीं होता। दुनिया में विचारों की भिन्नता के कारण ध्येय में भी भिन्नता होती है। यह भिन्नता न केवल सांसारिक व्यवहार में किन्तु धार्मिक कृत्यों में भी रहेगी। दुनिया के सब लोग चाहें कि हम सब के सब डाक्टर, हकीम, वकील बन जायें तो यह असम्भव है। जिसकी प्रकृति वकील या डाक्टर बनने के योग्य होगी वही बनेगा दूसरा नहीं। यही कारण है कि व्यवहार में सब के आइडियल भिन्न होते हैं। कोई शिक्षक है, कोई किसान है, कोई व्यापारी है आदि आदि। इसी तरह धर्म का भी हाल है, कोई शैव है, कोई शक्तिक है; कोई वैष्णव है, जिस तरह दुनिया के कारबार के इष्ट में अन्तर है वैसे ही धर्म के इष्ट में भी अन्तर होगा। सब धान एक पंसेरी नहीं बिक सकते। जहां जिस मण्डल में यह प्रयत्न किया जाता है कि सब एक विचार धारा को ग्रहण करें और एक ही सिद्धान्त पर चलें, वहां परिणाम भयंकर होता है। इसी प्रकार काम के आइडियल के सम्बन्ध में याद रक्खो।

काम करने का आइडियल यथाशक्ति ऐसा हो कि मनुष्य दास की हैसियत में काम न करे किन्तु मालिक की हैसियत में करे। जिन्होंने अपना इष्ट या आइडियल दास का आइडियल बना लिया है उनसे कुछ कहना नहीं है। हमारा कहना उन लोगों से है जो उच्च श्रेणी की सफलता प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसे लोगों के लिए यह आदेश है कि वह मालिक बनकर काम करें। मालिक बनकर काम करने से यह अभिप्राय नहीं है कि जिस दफ्तर में नौकर हो वहां छापा मारकर अधिकार कर लें। कहने का मन्तव्य यह है कि जिस काम को हाथ लगाया है उसको अच्छी तरह करें। अपना दिल खोल दें और उसके असर से काम को ढ़क दें। जब काम करने लगें तब अपने को एक कर दिखायें। अपने आप को भूल जायँ। इसका फल यह होगा कि वह

काम योग का साधन बन जायगा और कर्त्ता को बरकत देगा। इसके दिल में नई नई चोट लगती रहेंगी और उससे नई नई योग्यतायें उत्पन्न होंगी, जो काम को हर समय शानदार बनाती जायगी और वह आत्म ज्ञान का अधिकारी होता जायगा। यह मालिक बनकर काम करना है। अभिप्राय यह है कि हम काम पर अपना असर डालें, उसको सुन्दर बनावें, वह हम पर अपना असर न डालने पावें।

दास के काम करने का ढंग यह है कि दफ्तर में बैठते हैं, काम भी करते जाते हैं और साथ ही घड़ी की सुई की ओर भी दृष्टि रहती है कि कब चार बजें और घर चलें। यह समय की प्रतीक्षा करते हैं। जहाँ चार पर मौंगरी पड़ी और नौ दो ग्यारह हो गये। ऐसे काम करने वाले निचले होते हैं। वह काम भी क्या हुआ कि जिसमें लगकर मनुष्य अपने आप को न भूला। सारी खुशी अपने आपके भूल जाने में है। जो मनुष्य अपना, अपने स्वास्थ्य का, अपने धन का और साथ ही काम का भी ख्याल रखता है वह दुचिता है, पापी है। उसको सच्ची सफलता प्राप्त न होगी। दास की हैसियत से वेतन लेगा और सारा जीवन भूके बैल की तरह दफ्तर के चारों ओर चक्कर लगाया करेगा तथा तरक्की प्राप्त न करेगा क्योंकि उन्नति काम करने वालों के हिस्से में आती है।

धारा (5) विरोध या विरोधी सामान का भय न करो। न यह सोचो कि मेरे पास जरूरी सामान नहीं है। सामान स्वयं पैदा होते जायगें।

व्याख्या—कायर, निकम्मे और डरपोक कहा करते हैं, 'क्या करें धन नहीं, कैसे व्यापार करें।' सुस्त, काहिल और अपाहिज बहाना बनाया करते हैं। 'क्या करें सामान नहीं है। काम कैसे प्रारम्भ करें। लोग कहते हैं कि काम तो हम करने को तत्पर हैं मगर इस बात का भय है कि लोग विरोधी हो जायेंगे, विरोध करने लगेंगे और विरोध का सामान चारों ओर पैदा होकर हमको नष्ट कर देगा। यह अज्ञानियों की बातें हैं।

जिनके मस्तिष्क में काम करने का आइडियल कायम हो जाता है उनको न तो किसी का भय होता है न सामान के अभाव की शिकायत होती है

और न वे विरोध की परवा करते हैं। जहाँ काम की धुन बँधी, वह हवा की तरह अपना काम करने लगते हैं। जो काम सामने आया तुरन्त डट गये और उन का काम स्वयं हो गया। काम में बड़ी शक्ति है। क्योंकि उससे दिल का सम्बन्ध होता है विरोधी क्या रुकावट कर सकेगा। कोई विरोधी विरोध को अपना आइडियल नहीं बना सकता। यह असम्भव है। सम्भव है कि २४ घंटे में तुम १८ घण्टे काम करो। अब क्या तुम्हारा विरोधी तुम्हारे कुचलने के लिए इतना समय दे सकता है। उसको तो और भी काम करने हैं। तुम केवल डर रहे हो और यह डर तुम्हारे संकुचित दृष्टि के कारण है। यदि तुम दिल की सारी शक्तियों को काम में लगा दो तो एक दो नहीं हजार विरोधी खड़े हो जांय, तुम्हारा बाल भी बाँका न कर सकेंगे। जहां काम का घूमने वाला पहिया सामने आया नहीं कि या तो वे डर के मारे भाग जायंगे या ऐसे कुचल डाले जायेंगे कि हड्डी पसली तक का पता न रहेगा। थोड़ा साहस करके किसी काम का करना आरम्भ तो करो फिर मुझसे आकर बात करना।

काम काम को सिखाता है। काम से काम सीखा जाता है। सम्भव है आज तुम में योग्यता की कमी हो। थोड़ा काम में हाथ तो लगाओ, फिर नई नई सूझ सूझने लगेंगी और तुम स्वयं अपनी योग्यता और बुद्धिमता पर वाह-वाह करने लगोगे। सारा खेल तुम्हारे मन का है। जिधर मन आकर्षित हुआ उसी ओर आश्चर्य जनक परिणाम देखने में आयेंगे। इसी मन को अपना बनालो फिर जंगल में मंगल हो जायगा।

नये नये सामान मन अपने आप उत्पन्न करता जायगा। मैं तुमको कैसे समझाऊँ! मैं हर बात प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। तुम नहीं समझते मगर मैं कभी न कभी तुम को समझा कर छोड़ूँगा।

प्रकृति माता बड़ी सावधान बुद्धिमान और चतुर है। वह प्रत्येक व्यक्ति को प्रारम्भ में जगह देती है। जहां उसकी बुद्धि और मस्तिष्क में अंकुर जमने लगा वह शीघ्र ही उसको बढ़ाती जाती है। एक स्थान पर नहीं रहने देती। उसके यहाँ योग्यता का भंडार कुछ और है। तुम यह भी न कहो कि उन्नति

नहीं मिलती। यदि तुमने अपनी दशा में उन्नति नहीं की तो यह किसी दूसरे का नहीं किन्तु स्वयं तुम्हारा दोष है। अपने हृदय और मस्तिष्क को ऊंचा करो। तुम उन्नति के जीने पर चढ़ते हुये दिखाई दोगे। प्रकृति में जाति-पाँति का प्रश्न नहीं आता प्रश्न हृदय के भावों का है।

जाति पाँति पूछे नहीं कोई। हरि को भजे सो हरि का होई ॥

जिसने बढ़ई के पुत्र हजरत मसीह को दुनिया का राजा बना दिया और जिसका फतवा सारे यूरोप के ताजदार पढ़ते हैं वह तुमको भी उन्नति देने का इच्छुक है। हाँ, तुमको उन्नति के नियमों पर चलना आवश्यक है। छोटी जाति के लड़के बादशाह तक हो गये हैं। यदि तुम भी कुछ होना चाहते हो तो हो सकते हो क्योंकि आत्मा में हर प्रकार की उन्नति सम्भव है। वह समस्त योग्यताओं का भंडार है।

जिसको किसी बात की लयन लग गई वह सब कुछ कर लेता है। उसको ऐसी सूझती है कि संसार चकित रह जाता है। उसका हृदय सर्वांग से काम की ओर लग जाता है तुम भी मन में काम की ऐसी लगन लगाओ। धर्म कर्म तक का विचार न करो। काम तुम्हारे आचरण को उच्च बनाता जायगा। लगजिस खा खा कर तुम बलवान और धार्मिक बनते जाओगे। बुद्धि और विद्या की बातें सोचने लगोगे और न केवल अपने काम को ठीक कर लोगे, किन्तु सफलता के जगत में इस प्रकार चमकने लगोगे जैसे जेठ के महीने में मध्यान काल का सूर्य चमकता है और कोई इससे दृष्टि नहीं मिला सकता।

ऐ मानव तेरी माया विचित्र है तू क्या नहीं कर सकला ! सब कुछ तेरे हाथ में है। मत डर। तू किसका भय करता है ? तेरे अतिरिक्त अस्तित्व किसका है ? तू ही सब जगह पर पूर्ण व्यापक है। जिधर ध्यान देगा उसी ओर सफलता तेरा पग चूमेगी।

तुम जो व्यवहारिक जगत को सच समझ रहे हो, कुछ हानि नहीं। इसको सच समझो। प्रयत्न करो। शान्ति पूर्वक काम में लगजाओ। वाह्य विरोध का ध्यान भुला दो हृदय की पिचकारी को चोट पर चोट दिया करो

ताकि काम पर रंग छिड़काव होता जाय। वह तुम्हारे प्रभाव से प्रभावित और सफल हों। समय आयेगा जब तुम दूसरी बातों को अपने आप जान जाओगे।

घबराओ मत। चिन्तित मत हो। मन को वश में करो। जहाँ मन वश में आया, फिर क्या है ? जीत गये।

सुनो ! गुरु क्या कहते है :—

मन के हार हार है मन के जीते जीत।
मन ही राग और द्वेष है, मन ही प्रेम प्रतीत।
कबीर मन परबत हथा अब मैं पाया जान।
टाँकी लागी प्रेम की, निकली कंचन खान।
पहिले यह मन काग था, करता जीवन घात।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुन २ खात।
मन गोरख मन गोविंदा, मन ही औघड़ सोय।
जो मन राखे जतन कर, आप ही करता होय॥

सारा खेल तुम्हारे मन का है। इसको वश में करली। सफलता ही सफलता है। इसको परेशान करदो परेशानी ही परेशानी उसका परिणाम होगा।

अब प्रश्न यह है कि यह मन कहाँ रहता हैं ! कबीर साहब का कथन हैं—

प्रश्न–इस तन में मन रहता कहाँ, निकल जात किहि ठौर।
गुरु गम होय तो परख ले, नातर कर गुरु और॥
उत्तर— नैनों माहीं मन बसे, निकस जात नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, संतन के सिर मौर॥

मगर खेद इतना है:—

यह तो गति है अटपटी, सट पट लखे न कोय।
जो मन की खटपट निटे, चट पट दर्शन होय॥

—:000:—

'सार का सार' से—

प्रथम प्रवचन

(हनमकुण्डा ता० 9—2—62 प्रा::)

आज बसन्त का दिन है। इस दिन सत्पुरुष नाधास्वामी दयाल ने सत्संग का सिलसिला जारी किया था। मैं ब्राह्मण वंश में पैदा हुआ था, इसलिये हिन्दू धर्म, हिन्दू शास्त्रों और हिन्दू शास्त्रों के संस्कार बचपन से थे। उस परम तत्व, आधार, राम या मालिक के मिलने और आवागमन से बचने की इच्छा थी। मेरी इच्छा या मौज मुझे दातादयाल महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज के चरणों में लेगई, जिनको मैं अपने विश्वासानुसार राम या मालिक का अवतार मानता था। मैं पहिली बार १९०५ ईस्वी में उनके चरणों में गया था। उन्होंने मुझे राधास्वामी मत की शिक्षा दी और 'सार वचन पद्य' (स्वामी जी की वाणी) पढ़ने को दी। वहाँ माया संवाद में स्वामी जी ने तमाम मतों को काल मत कहा है। इसी वाणी का एक भाग 'हिदायतनामा' है। इसमें योग की श्रेणियों का हाल है।, उसमें यह भी वर्णन है कि सन्त ईश्वर पपमेश्वर के कर्त्ता होते हैं। उस समय मैंने यह प्रण किया था कि मैं इस तथ्य का सचाई का अनुभव करूँगा और जा अनुभव होगा ओ अक कि मैं साधारण को बता जाऊँगा। इसलिए यह जो सत्संग का काम करता हूँ यह किसो पर अहसान नहीं है किन्तु जैसी वासना थी या जैसा संकल्प किया था वह सामने आ रहा है।

आज इस बसंत पंचमी के दिन मैं इस शिक्षा का वर्णन निज अनुभव के आधार पर करना चाहता हूं कि जो मैंने समझा है या जिस निष्कर्ष पर मैं पहुँचा हूँ।

दातादयाल कहा करते थे कि जिस वस्तु को देखो ध्यान से देखो, पूरी तरह से देखो। मेरी स्त्री बीमार है। ख्याल आता है कि क्यों बीमार है। मैं प्रायः उसके लिए दवा को डाक्टर के पास जाता हूं। उसके पास एक

साल छः छः माह के बच्चे आते हैं। कोई कुछ बीमार, कोई कुछ। माना कि मेरी स्त्री ने कोई बुरे कर्म किए होंगे जिससे रोगी है मगर छोटे बच्चो ने क्या बुरे कर्म किए जो वे कष्ट उठायें। उत्तर होता है कि या तो उन बच्चों का प्रालब्ध कर्म है और इन कर्मों को न मानें तो यह मानना पड़ेगा कि यह कर्त्ता पुरुष का खेल है। एक चीज माननी पड़ती है अर्थात या तो कर्मों का फल है या बनाने वाले का खेल है।

इस युग का प्रभाव ऐसा है कि मानव जीवन में क्रान्ति (Revolt) करता है सन्तों ने भी क्रान्ति की। वे कहते हैं कि दुनिया का रचने वाला निर्दयी है। यह काल है। कबीर की वाणी में काल को कराल कहा गया है। मैं उस भगवान को मानने वाला था जिसने दुनिया बनाई है। मुझ पर उन महापुरुषों के बचनों का प्रभाव पड़ा। मैं बिवश हुआ कि जहाँ तक इस रचना का सम्बन्ध है यह देखूँ कि यदि इसके रचने वाला निर्दयी है तो कोई जगह है जहाँ निर्दयता नहीं है अर्थात जहाँ दयालता हो, जहाँ सुख दुख न हो। यही ख्याल मुझे दातादयाल ने मुझे दिया था। वह कैसे दिया ? चूंकि मैं दुखों से बचना चाहता था उन्होंने सन 1921 में यह शब्द मेरे नाम लिखा :—

काल चक्र

काल चक्र है सहज हिंडोला, झूला अचरज न्यारा।
सब कोई झूले झूला चढ़कर, काल झुलावन हारा॥
चन्द्र सूर्य दोऊ गगन में झूलें, झूलें नव लख तारे।
जीव जन्तु पृथ्वी में झूलें, नर पशु सकल विचारे॥
राजा झूला रानी झूली, और प्रजा समुदाई।
ब्रह्मा, विष्णु महेश्वर झूले, झूली सब दुनियाई॥
लक्ष्मी झूली दुर्गा झूली, गायत्री महारानी।
देवा झूले देवी झूलीं, नभ थल अगिनी पानी॥
काल भी झूला अपने झूला, सृष्टि प्रलय कर प्यारे।

वह भी बचा न चक्र से अपने झूला झूले सारे ।
चढ़ी पेंग जब ऊँचे आये, उतरी नीचे ठहरे ।
कभी मिले तो जमघट देखी, बिछुड़के होगये न्यारे ॥
एक दशा में नित जो बरते, कोई नजर न आया ।
पीर पैगम्बर कुतुब औलिया, ऋषि मुनि बच नहिं पाया ॥
पानी भया पाप की सूरत, धाया गिरि कैलासा ।
बरफ बना धारा बह निकली, नीचे किया निवासा ॥
नीचे भी रहने नहिं पाया, फिर ऊँचे की आशा ।
हम तो देखें खुली दृष्टि से, अचरज अजब तमाशा ॥
लकड़ी जलकर कोयला होगई,कोयला राख और माठी ।
माटी माटी में नहिं ठहरी, बनी काठ और लाठी ॥
विष्टा अन्न अन्न भया विष्टा, सोई सब कोई खावे ।
यह प्रपंच है अद्भुत न्यारा, कोई बिरला लख पावे ॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति लीला, कभी ऐसी कभी वैसी ।
यह सब काल बली की माया, कभी जैसी कभी तैसी ॥
पंडित कभी अनाडी होते, कभी अज्ञानी ज्ञानी ।
कभी जड़ मिल जुल चेतन ठहरे, कभी चेतन जड़ जानी ॥
समुझत बने कथन नहिं आवे, मन वानी अलसानी ।
कोई कैसे समझावे किसको, समझे कोई गुरु ज्ञानी ॥
एक दशा में कोई न बरते कभी बैठा कभी दौडा ।
कभी थका कभी सोया लेटा, काल चक्र अति चौड़ा ॥
भूले की है विचित्र कहानी, कथा वार्ता न्यारी ।
नर को हम समझावन आये, सुने न बात हमारी ॥
दुख सुख सुख दुख द्वन्द पसारा, द्वन्द से प्यार बढ़ाया ।
द्वन्द भाव से जगत रचाया, द्वन्द के फाँस फँसाया ॥
मन बुद्धि और चित हंकारा, सो मूले की रकेरी ।
दोलड़ त्रयलड़ चौलड़ बनि आई, जीव निबल की जकड़ी ॥

जकड़े माया के फन्दे में, रोवे और चिल्लाये।
शोर मचाये बहु चिल्लाये, छूटन विधि नहिं पाये ॥
तब दयाल की दाया लागी, संत रूप धर आया।
राधास्वामी अचल मुकामी, 'सालिगराम' कहाया ॥
नर शरीर में प्रगटा आकर, जीवन बहुत चिताया।
जो कोई जीव शरण में आया, अपना कर अपनाया ॥
सुन 'फकीर' यह गुरु उपदेणा, मैं भी तुझे सुनाऊँ।
बात जो मेरी मन से माने, इस झूले से बचाऊं ॥
खेल खिलाऊँ सुगम सुहेला. सुरत शब्द मत गाऊँ।
काल हिंडोले से तू बाचे, बिधि विचित्र समझाऊँ ॥
कर सत्संग विवेक से गुरु का, गुरु दयाल हितकारी।
साधू बन कर साध ले युक्ती, जा झूले की पारी ॥
नर शरीर सुर दुर्लभ पाया, सत संगत मे आया।
तेरा दाब पड़ा है पूरा, सोच समझ तज माया ॥
अब की चूके मौज न ऐसी, त्याग काल की आसा।
आज का साधन आजहि करले, कल को होगा उदासा ॥
बार बार नहिं अवसर प्रानी, काल महा दुखदाई।
जो कोई करे काल की आशा, सो पीछे पछिताई ॥
राधास्वामी दया के सागर, तेरे कारन आये।
सीस चरन में उनके झुकाकर, अपना काज बनाये ॥
राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी गाना।
मन बच कर्म से भक्ति करना, झूले बाहर आना ॥

यह सब्द आपने सुन लिया। मैं बड़ा अज्ञानी था। बचपन की शादी के कारण मन अधिक कंचल था इसलिए उस उपदेश को जो दाता दयाल ने मुझे दिया था समझ नहीं सकता था। दातादयाल ने यह देखकर कि यह आदमी सच्चा है मगर मन की चंचलता से बात इसकी समझ में नहीं आती है मुझे आश्चर्य पदवी दी। सन 1919 ई० में पाँच पैसे और नारियल रखकर

मुझे नमस्कार किया लेकिन तुम यह समझते होंगे कि मैं कोई महापुरुष था। यह बात नहीं, उन्होंने मेरे सुधार को यह खेल खेला था। यह कहा था कि फकीर यह न समझना कि तुम किसी का बेड़ा पार करोगे मगर राधास्वामी धाम में वासा दिलाने वाला सतगुरु सत्संगियों के रूप ने तुमको प्राप्त होगा। मैंने आश्चर्य पदवी ग्रहण की। मैं इस काल और माया के चक्र से निकल नहीं सकता था, इसलिए मुझे यह काय दिया पया।

=:000:=

काल और माया

मैं बताना चाहता हूं कि माया नाम है ख्याल, भाव व विचार का, चाहे वह भाव विचार धार्मिक हों, चाहे भक्ति के, चाहे भले हों या बुरे। हमारे अन्दर जितने भाव विचार और आशायें हैं चाहे दुनिया की चाहे प्रेम या भक्ति की अथवा योग की, सब माया के अन्तरगत हैं। दाता दयाल ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—मा—मापना, या—यन्त्र अर्थात नापने की वस्तु। उसका नाम माया है। यह हमारी बुद्धि है। वह अच्छी भी है और बुरी भी है।

मैं दाता दयाल से प्रेम किया करता था। उनकी आरती करता, फूल चढ़ाता, रुपया देता, सिंहासन बनाता आदि आदि। यह सब कर्म माया का था। मैं उससे निकल न सका। मैं दाता दयाल (महर्षि शिव) के रूप को सब कुछ समझकर उनसे प्रेम करता था इसलिए इस माया के चक्र से निकालने को यह काम सत्संग का मुझे दिया। मैं कैसे निकला। निकालने वाले आप सत्संगी लोग हैं। मेरे पास सैकड़ों सत्संगियों के पत्र आते रहते हैं। वह कहते हैं कि आप हमारे अन्तर प्रगट होते हैं। आपका रूप प्रकाश में हम में प्रगट होता है। किसी को दवा बता देता है, किसी को अभ्यास में चढ़ाई करा जाता है आदि आदि। हाल की एक घटना सुनाता हूं—

मध्य भारत में एक गनेशचन्द्र नामी सत्संगी हैं एक मास हुआ उसने लिखा कि आपकी आज्ञा अनुसार मैंने कुछ दिन मौन रक्खा। जब मैं रात

को १० बजे अभ्यास में बैठा तो देखा कि प्रकाश का एक पहाड़ है। उसकी दृष्टि से एक मील है। उसमें से किरणें निकल रही हैं। उनमें से देवताओं का दल निकल रहा हैं। वह आगे लिखता है कि मैं (फकीर) उसे चीरता हुआ आया। उसे पकड़ कर ले गया जब होश आया तो उसने यह पत्र मुझको लिखा। अब मैं तो वहां गया नहीं। फिर कौन गया ? जिस प्रकार का विचार, संस्कार, भाव या आशा मनुष्य के अपने अन्तर में होती है और जब वह साधन मे बैठता है तो वही भाव और संस्कार प्रगट होते हैं। जब मैं जिन्दा उसके अन्दर नहीं गया तो कैसे कहूं कि देवता उसके अन्दर आये। मैं राधास्वामी मत वालों को सच्चा ज्ञान देने आया हूं। क्यों देता हूं ? इस लिये कि दाता दयाल ने एक शब्द मेरे नाम लिखकर आज्ञा दी थी —

देह के बन्ध फकीर जो आवे, बन्ध निरबन्धन सोई।
बन्ध कर बन्धुवे जीव छुड़ावे, समझे यह गति कोई॥
तू तो आया नर देही में, धर फकीर का भेषा।
दुखी जीव को अङ्ग लग कर, लेजा गुरु के देशा॥
तीन ताप से जीव दुखी है, निबल अबत्र अज्ञानी।
तेरा काम दया का भाई, नाम दान दे दानी॥
नाम फकीर धराया तूने, काम फकीर का कर ले।
गुरु की दया साथ ले अपने, भक्ति की झोली भरले॥
तू इराक से अबके आया, संत सत्संग के कारण।
ले प्रसाद यह सत संगत का, होजा भव निधि तारण॥

मैं इसको नहीं समझ सका। मेरे उद्धार के लिए यह सत्संग का काम दिया गया था। उस ऋण को उतारने को मैं सिर खपाता हूं। मैं वह रहस्य बताने आया हूं कि लोगों के भ्रम मिट जांय। चूंकि मैं भ्रम में फँसा हुआ था अतः दाता दयाल मुझको उस भ्रम से निकालने को अनेक प्रकार से चेताया करते थे। इनका एक शब्द भ्रम के बिषय में मेरे नाम है। सुनो—

क्यों भरमा फकीर ! क्यों भरमा फकीर ! काहे दीवाना होगया।
— — गहा, ले ठौर ठिकाना होगया ॥

नहिं होय अकाज, नहिं होइ अकाज, जमफंद कटाना होयगा।
क्यों बिकल रहे, क्यों बिकल रहे, अब तो मस्ताना होयगा॥
तन बिकल हुआ, तन बिकल हुआ, गंगा स्नाना होयगा।
सत्संग में आ, सत्संग में आ, जप तप और ध्याना होयगा॥
क्या नेम धरम, क्या नेम धरम, जब सत का ग्याना होयगा।
नित-नित का कर्म नि-नित का कर्श राधास्वामी गुनगाना होयगा॥

(सेठ चन्द्रकान्ता उर्फ धर्मदास की ओर संकेत करते हुए कहा—धर्मदास जैसे दीवानो ! भेद को समझो, शब्द को पढ़ो, वहां क्या लिखा है)

जब यह बात मेरी समझ में नहीं आई थी तब शब्द मेरे नाम लिखा था तब मैं क्या किया करता था ? दाता से प्रेम करता, आरती उतारता सिंहासन बनाता आदि आदि। उस समय दाता दयाल इशारा करते कि क्यों दीवाना हो गया है, मगर मेरी दीवानगी जाती नहीं थी। कुछ अज्ञान था और कुछ वाणियों के जात का प्रभाव था। मगर सत्संगियों के अनुभवों ने मेरे इस अज्ञान को दूर किया। कहा है—

गुरु बतावे साध को, साध कहे गुरु पूज।
अर्श पर्श के सेल ले, बूझी बूझ अबूझ॥
शिष्य नवे है गुरु को, यह जाने सब कोय।
गुरु नवे जब शिष्य को, विरला जाने सोय॥

मैं आज से नहीं सन् 1919 ई० से इस भेद या रहस्य को जानता हूं। मैं दातादयाल की बड़ी भारी मानसिक भक्ति करता था। दाता का रूप बनाता मुकट बनाता, माला पहिनाता आदि आदि मगर वह क्या निकला ? माया ! यह मन के ही विचार थे। मैं माया के जाल में फँसा हुआ था। स्वामी जी ने भी कहा है—

भक्त उपासक योगी ज्ञानी, इन सब का चक्कर खाया।

मैं भी इसी तरह चक्कर खाता रहा मगर अब मैं इससे निकल गया हूँ। अब मैं क्या करता हूं ? मैं अब मन के चक्र से उतर रहता हूँ। वह मन का चक्र था रूप, रंग और रेखा। जहां तक इनका सम्बन्ध है उनके साथ उनको

सन्त मानकर अपनी तवज्जय (Attention) को जोड़ना, साथ लगे रहना, उनमें आनन्द लेना, यह सब काल और माया का चक्र है।

तुम पूछोगे फिर मैं कहा करता हूं। अब मेरा आपा (Self) निजस्वरूप (Self) के साथ रहना है। राधास्वामी दयाल मेरा आपा (Self)।

यह माया कठिन जाल है। इस चक्र से निकलने की अधिकारी पदार्थों से आसक्ति रखने वाली दुनिया नहीं है। इसका अधिकार उनको है जो अशांत और दुखी हैं या जो आवागमन और काल माया के चक्र से बचना चाहते हैं।

जब तवज्जह (सुरत) दूसरे पदार्थों के साथ लगी है तो वह काल माया के चक्र से न निकल सकेगी। अभ्यास में मन संकल्प उठाता रहता है। उस समय जो रूप बनते हैं हम उनसे आसक्ति (Attach) करते हैं। अनेक रूप बनाते हैं—गुरु का, राम का, कृष्ण का, नानक का आदि आदि। यों समझो कि जिस जिस से सम्बन्ध जोड़ रक्खा है उसी भाव के अन्तर्गत रूप बनते रहते हैं। वह रूप बनाता है मन। हम मन से रूप बनाकर आप फँसे रहते हैं। चूंकि हमको सार ज्ञान की प्राप्ती नहीं हुई है इससे उसे भिन्न या दूसरा समझते हैं। फिर आवागमन से कैसे बच सकते हैं।

अतः राधास्वामी दयाल, कबीर तथा ऋषियों की शिक्षा यह है कि अपने आप (Self) को अपने निजस्वरूप (Self) से लगाना और कल्पनाओं से जो रूप आप बनाते हैं उनसे अलग होना है वर्ना बचाव की कोई सूरत नहीं है। यह ८४ का चक्र है।

इसलिये मैं राधास्वामी दयाल या सन्त मत की इज्जत करता हूं क्योंकि मैं इनकी कृपा से काल माया के चक्र से निकल गया। अभी इस चोले में हूं। जगत कल्याण के काम करने के लिये।

मैं इस काल माया के चक्र से कैसे निकला? यह कि मुझे ज्ञान हो गया कि असलियत क्या है। जिन लोगों ने मुझ पर विश्वास किया अथवा जिन्होंने मुझे गुरु माना, उनके अनुभवों से मेरे नज्ञान का पर्दा हट गया। आज मैं दातादयाल के रूप में आपके दर्शन करके अपने को कृतार्थ कर रहा हूं।

[illegible] का इन शब्दों में नहीं खोला जिस तरह कि मैंने खोला है।

मैंने इस रहस्य या भेद को क्यों खोला ? क्योंकि मैं मूर्ख था, रहस्य समझ में नहीं आता था। समझता था शायद दूसरे भी मेरी तरह ऐसे ही होंगे। दातादयाल ने इसी बात को समझाने के लिये अपने अन्तिम समय में एक बार सतसङ्ग में कहा कि (यहां के सतसंगियों में) बेवकूफ चुनो। उसमें सबसे पहला नाम नन्दू भाई जी का था। ऐसा उन्होंने क्यों कहा ? क्योंकि बेवकूफ उसे कहते हैं जिसको समझ न हो, ज्ञान न हो। मनुष्य अपनी मुक्ति दिलाने वाला किसी दूसरे को समझता है। वास्तव में मुक्तिदाता है समझ या ज्ञान।

आज बसन्त का दिन है जिस दिन स्वामी जी ने सतसंग का क्रम चालू किया था। आज ही के दिन मैं कहता हूँ कि राधास्वामी मत को भावी सन्तान याद करेगी। यही मत है जो आज के समय में मुक्ति दिला सकता है। मैं राधास्वामी मत को इस कारण से सच्चा मानता हूँ कि वह केवल पूर्ण पुरुष की भक्ति बताता है। वह भक्ति क्या है ? सतसंग में बैठकर उस की बात को ध्यान से सुनता है। यह ही भक्ति है। मत्थे टेकना, फूल चढ़ाना भेंट देना आदि यह बच्चों जैसे अज्ञानियों को है मगर है वह आवश्यक। यह हमारी रीति है, पृथा है। इसलिये आज बसन्त के दिन मैं सतपुरुष राधास्वामी दयाल की वन्दना करता हूं।

—०—

सतसंग महिमा

(पलटु शब्द व्याख्या)

दुर्गादास 'चमन'

पिय से मान न कीजै रजनी,
सजनी हठ तजि दीजै।

जो तू पिय को चाहै प्यारी,
सतसंगति भजि लीजै ।
पलटुदास तन मन धन दै कै,
प्रेम पियाला पीजै ।

पलटु साहिब की बाणी निडर, निर्भीक और परम सत्यता से भरी हुई है । उनकी वाणी यह भी स्पष्ट कर रही है कि वह कई पन्थों में जाने के उपरान्त फिर सन्तमत की ओर आए थे। उन्होंने हर विषय की ओर लिख कर फिर उसे सन्तमत की ओर मोड़ा है । उनकी कुण्डलियाँ सार भेद को बताती रहती हैं। यह सतसंग की महिमा पर बहुत बल देते हैं । ऊपर के शब्द में भी सतसंग की महानता ही बता रहे हैं। वह सुरत को कहते हैं कि हठ को छोड दो और पिया (मालिक) से प्यार करो । हमारी चेतनता नीचे आकर दुनिया के सुख दुःख में फँसी रहती है । ऊपर सूक्ष्म जगत में सूक्ष्म दृश्यों में खेलती रहती है । उससे भी ऊपर कारण में ब्रह्म का आनन्द लेती है। इस प्रकार से द्वैत से यह छूटती नहीं है । आगे वह कहते हैं कि—

जो तु पिया को चाहै प्यारी,
सतसंगति भजि लीजै ।

यदि तू मालिक को चाहती है तो सतसंगत को भज। अर्थात सन्त, साध का सतसंग कर । उसके द्वारा यदि कोई अभ्यासी है तो उसे अभ्यास की कमियों का पता चलेगा और वह संभलेगा । कई इस प्रकार के अभ्यासी भी होते हैं जो कि बहुत उँचे केन्द्रों पर पहुँचे हुए होते हैं, किन्तु उन्हें अपनी अवस्था का ज्ञान नहीं होता है । पलटु साहिब कहते हैं कि यदि तू तन मन व धन सब सतगुरु के पास भेंट करके उनसे प्रेम करेगा और फिर सतसंग सुनेगा तो सब कार्य ठीक हो जावेगा।

एक दूसरे शब्द में भी वह सतसंग पर जोर देकर कह रहे हैं ।

जिन पाया तिन पाया है, सतसंग सखी री ।
तीरथ वरत करै कोउ कितनौ, नाहक जन्म गँवाया है,
जप तप जज्ञ करै कोउ कितनौं, फिरि फिरि गोता खाया है।

वेद पढ़ि पढ़ि पंडित मर गया, फिरि चौरासी आया है।
पलटूदास बात है सहजी, संतन भेद बताया है।

अब इस शब्द में भी पलटु साहिब सतसंग पर जोर दे रहे हैं, वह कहते हैं कि जप तप यज्ञ वेद यह जो कुछ लोग करते हैं सब अपने मन के द्वारा ही करते हैं। किसी को भी सार भेद का पता नहीं चलता। वह कहते हैं कि इस भेद को केवल सन्त ही सतसंग में खोलते हैं और सच्चा जिज्ञासू उसका लाभ उठा लेता है।

प्रिय मित्रो, सच जानो मोक्ष मार्ग को समझना कठिन नहीं है। हाँ, पूर्ण पुरुष या परमसन्त का मिलना कठिन है यदि मिल जाए तो विश्वास होना कठिन है।

अगले अंकों में पूर्ण पुरुष कौन हैं उसके सतसंग से कैसे लाभ होता है, वह अपनी पहचान कैसे देता है हजूर इस पर विचार करवाएगे। अतः 'मनुष्य बनो' पढ़ते रहिए।

शब्द

रे साधो, सतसंग महिमा परम अपार।

१—कबीर साहिब ने महिमा गाई, तुलसी इसे अपनाया।
पलटु ने व्याख्या कर डाली, स्वामी भेद बताया।
परमदयाल ने परम दया से स्पष्ट कर दिया सार।
रे साधो, सतसंग महिमा परम अपार।

२—सतगुरु से जब भेद मिल गया कर ले आप कमाई।
सतगुरु की महिमा है भारी, सब सन्तन ने गाई।
सतगुरु के सतसंग में जाकर दुविधा को दे ज़ार।
रे साधो सतसंग महिमा परम अपार॥

३—सतसंग में सब संशय मिटते यह है कि एक निशानी।
हृदय पर शुभ चोट है पड़ती ऐसी उनकी बाणी।
धीरे २ ज्ञान उमड़ता ऐसी रहनी धार।
रे साधो, सतसंग महिमा परम अपार।

४—राधास्वामी की कृपा से, सतसंग समझ में आया।
परमदयाल सहाई बन गए, 'चमन' ने शब्द बनाया॥
सतसङ्ग को आधार बना ले हो जाएगा पारा।
रे साधो, सतसङ्ग महिमा परम अपार॥

—×—

चेतावनी

काम जो करना हुआ, चित दे उसे करते रहो।
छोड़ो दुविधा दुरमति, दुचिताई से डरते रहो॥
यह समझ लो तुम हुये, जैसा किया कर्म और विचार।
अपनी करनी पार उतरनी, है यही उपदेश सार॥
सोचो अपने मन में, औरों से न पूछो बात को।
बचके चलना दूर करके, मन के सब उत्पात को॥
एक चित होकर करो, सुमिरन भजन दिन रात तुम।
करनी से हो लगन सच्ची, कथनी को दो मात तुम॥
सहज में साधन हो, कठिनाई की चिन्ता छोड़कर।
काम में अपने लगो, बातों से मुँह को मोड़कर॥
जो करो पूरा करो, करना हो जो वह करलो अब।
भक्ति मुक्ति योग युक्ति, का सजा लो साज अब॥
राधास्वामी की दया से, जन्म अपना लो बना।
गुरु की सतसङ्गत करो, सब पूरी होगी कामना॥

रीत वह शैव मतवालों से सहर्ष मिलते हैं। इस से भी प्रमाणित होता है कि माधवाचार्य्य जी की प्रारम्भिक शिक्षा शैवों से ही हुई है। और उन्होंने अपनी सम्प्रदा चलाकर जिसको पूर्ण यज्ञ भी कहते हैं रामानुज और शंकर स्वामी के शिष्यों को मिलाने का यत्न भी किया हैं। यह शंकर के दशनामी साधुओं का बड़ा आदर भी करते हैं ॥

वैष्णवों में तिलक लगाने का बड़ा रिवाज है। माधवाचार्य्य के शिष्य गोपीचन्दन का तिलक लगाते हैं। और बीच में काली रेखा की श्रीं बनाते हैं और रोरी की बिन्दी दे लेते हैं। जब कोई इस मत को ग्रहण करता है तो उसको यज्ञोपवीत और चोटी रखने की आज्ञा नहीं रहती, डण्डियों की भाँति उसके एक हाथ में डण्डा और दूसरे में कमण्डलु रहता है। शरीर को ढकने केलिये एक लम्बी धोती पहनने तथा ओढ़ने की आज्ञा है। वह गेरुवे रंग की होती है इस प्रकार के सन्यासी बाल्य काल में बनाए जाते हैं। इस लिये उनमें किसी जाति विशेष का पक्षपात नहीं रहता ॥

इस मत में चार प्रकार की मोक्ष मानी गई है। सारूप अर्थात् विष्णु के रूप में लय हो जाना। सालोक अर्थात् विष्णु लोक में स्थान पाना, सन्निद्ध अर्थात् विष्णु की निकटता लाभ करना। सारिष्टी विष्णु की तरह बलवान होना ॥

माधवाचार्य्य जी संस्कृत के बड़े पण्डित हुए हैं। इन्होंने कई एक ग्रन्थ लिखे हैं ॥

यज्ञेश्वरभट्ट नामी ग्रन्थकार अपनी प्रसिद्ध पुस्तक आर्य्य विद्या सुधार में लिखता है कि माधवाचार्य्य ने बहुत से ग्रन्थों का टीका किया है जिनसे उनकी विद्वता प्रकट होती है। इनका सबसे अधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ सर्वदर्शन संग्रह है जिस में सिवाय वेदान्त के और शेष पन्दरहों दर्शनों की समालोचना की गई है। और यद्यपि कुछ बातों में हम उससे असम्मत हैं तथापि यह कहने से रुक नहीं सकते कि यह ग्रन्थ बड़ी योग्यता से लिखा गया है। सर्वदर्शन संग्रह में वेदान्त को संयुक्त न करने का कारण यह है कि उसी काल पंचदशी नामक ग्रन्थ विद्यारण्य स्वामी ने लिखा था, इसके अतिरिक्त माधवाचार्य्य जी ने कृष्ण यजुर वेद पर भी एक भाष्य लिखा है जिसको लोग अब तक बड़े चाव

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार आपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़। उत्तर प्रदेश
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर अलीगढ़
५—सम्पादक का नाम		श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता		भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फरचन्द जी महारा- की

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है।

दिनांक १५ अक्टूबर, १९७८

सुधा मीतल
प्रकाशक के हस्ताक्षर

Regd. No. L-ALG–28

पुस्तकें

हमारे यहां

महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज

कृत

हिन्दी की आध्यात्मिक, धार्मिक, स्त्री उपयोगी, स्वास्थ्य व मनोविज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें तथा 'शाहो' और 'मोती' सिलसिले के उपन्यास तथा परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज कृत उच्च कोटि की अमूल्य पुस्तकें मिलती हैं।

पूरा सूचोपत्र मंगायें।

डाक खर्च सब का अलग है।

पुस्तकें रजिस्टर्ड डाक या रेल से भेजी जाती हैं।

मिलने का पता :—

कार्यालय

मनुष्य बनो

शिव भवन, लेखराजनगर,

अलीगढ़ (उ० प्र०)

ग्राहक सं० 170

श्री [redacted]

अ० स० सम्पादक — महेशचन्द्र मीतल

सम्पादक

व्यवस्थापक व प्रकाशक — 83

श्रीमती सुधा मीतल,

शिव भवन, लेखराज नगर

अलीगढ़।